SHIKSHA SAMVAD
International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 2584-0983 (Online)
© Shiksha Samvad|Volume-03| Issue-01| September- 2025
Available online at: https://shikshasamvad.com/
DOI:

लोक संस्कृति और लोकनाट्य परंपरा

अलक्षेन्द्र प्रभाकर
रिसर्च स्कॉलर, थिएटर आर्ट्स विभाग, एकेडमी ऑफ़ थियेटर आर्ट्स, मुंबई विश्वविद्यालय

सारांश

'लोक' शब्द का तात्पर्य उस समस्त जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करता है। वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान समय तक 'लोक' शब्द का प्रयोग जनसामान्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। जनसामान्य के पारस्परिक त्योहारों, पर्वों,धार्मिक रीति - रिवाजों आदि मान्यताओं को ही लोक - संस्कृति की संज्ञा दी गई है। प्राप्त प्रामाणिक तथ्यों के अनुसार नाटक का जनक ब्रह्मा को माना जाता है और उन्हीं के आदेश पर भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की रचना की। अतः लोकनाटक परंपरा का मूल स्रोत नाट्यशास्त्र है। यह परंपरा संस्कृत, पालि, प्राकृत विकसित होती हुई हिंदी साहित्य में प्रवाहित हुई। भारतीय लोकनाटक भारत की विविध और समृद्ध लोक सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह भी सत्य है कि आदिकालीन कवियों से लेकर आधुनिक कवियों की रचनाओं में नाटकीय तत्व विद्यमान हैं और लोकनाट्य में रूपांतरित कर उन्हें लोक के समक्ष रंगमंच पर आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। प्रसिद्ध लोकनाट्यों रासलीला, रामलीला, तमाशा आदि में लोक संस्कृति का जीवंत चित्र उपस्थित किया जाता है।

महत्वपूर्ण शब्द : लोक, संस्कृति, लोकनाटक ,नाट्यशास्त्र, रंगमंच।

लोक शब्द की व्युत्पत्ति :

लोक संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है -- संसार। मृत्युलोक, पाताल लोक, पृथ्वीलोक, स्वर्गलोक, परलोक आदि इसी अर्थ को ध्वनित करते हैं। हिंदी के 'लोग' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'लोक' शब्द से मानी जाती है। 'लोग' संस्कृत के 'लोक' का अपभ्रंश रूप भी माना जा सकता है। 'लोग' का तात्पर्य है सर्वधारण जनता अथवा जनसामान्य से है। 'लोक' शब्द कदाचित व्यापक है। इसका अभिप्राय उस समस्त जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करता है। वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान समय तक 'लोक' शब्द का प्रयोग जनसामान्य के लिए प्रयुक्त हुआ है किंतु डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिस के व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं।1

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु में 'धन' प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ है देखना।2 'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं कि लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है जिसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। यह राष्ट्र का अमर स्वरूप है। कृतस्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यावसान है। अर्वाचीन में मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। 'लोक' और लोक का धात्री, सर्व भूतरतता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका

कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक, पृथ्वी और मानव इसी त्रिलोक में जीवन का कल्याणतम रूप है। 3 अतः कहा जा सकता है कि 'लोक' मानव - समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य नगरीय संस्कारों, शास्त्रीयता और पांडित्य - चेतना तथा उसके अहंकार से शून्य है तथा एक परंपरा- प्रवाह में जीवित रहता है। 4 सरल शब्दों में, साधारण जनों का समाज ही लोक माना जाता है। इसी 'लोक' से हम जीवन का तात्पर्य ग्रहण करते हैं। यह जीवन परिस्थितियों के बीच देशकाल की सीमाओं के घेरे से उन्मुक्त मूल प्रकृति जीवन के साथ सम्बद्ध है। समय की धारा के साथ-साथ 'लोक' का अर्थ भी परिवर्तित होता रहा है।5

अंग्रेजी भाषा में Folk शब्द हिंदी के 'लोक' का समानार्थी समझा जाता है। अंग्रेजी शब्दकोश में Folk का अर्थ Common people, people in general दिया गया है जिसका तात्पर्य सामान्यजन, जनसाधारण है। वास्तव में Folk शब्द आदिम जाति के उन सभी सदस्यों का बोधक है जिनसे वह समुदाय निर्मित हुआ है। इसका साधारण अर्थ फोकलोर,फोक म्यूजिक आदि में संकुचित होकर इसी अर्थ में आता है किंतु व्यापक अर्थ में इस शब्द से तात्पर्य सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को लिया जा सकता है।6

लोक संस्कृति : अर्थ एवं परिभाषा :

किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के पारस्परिक त्यौहार, पर्व, धार्मिक रीति-रिवाज, मान्यताओं, रहन-सहन, कला आदि को लोक संस्कृति के नाम से जाना जाता है। किसी भी क्षेत्र, प्रदेश को उसकी पृथक लोक- संस्कृति के कारण ही पहचाना जाता है। हम पहले बता चुके हैं कि लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से है जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान होती है। साधारण जनों की वेशभूषा, खान-पान, कला - कौशल, भाषा - बोली, रीति - रिवाज आदि भले पृथक - पृथक दिखाई देते हैं फिर भी एक ऐसा सूत्र है जिसमें ये सभी भिन्नताएं एक माला में पिरोई हुई मणियों की तरह दृष्टिगोचर होती हैं।यही एकरूपता लोक- संस्कृति कहलाती है। जॉर्ज एम० फास्टर मानते हैं कि लोक - संस्कृति को जीवन के एक सामान्य जीवन यापन के तरीके के रूप में देखा जा सकता है जो एक क्षेत्र विशेष के रूप में बहुत से गांवों, कस्बों तथा नगरों के कुछ लोगों या सभी लोगों की विशेषता के रूप में होती है और एक लोकसमाज उन व्यक्तियों के एक संगठित समूह के रूप में है। संस्कृति शब्द को और स्पष्ट करते हुए डॉ० रामसिंह यादव ने लिखा है कि संस्कृति का संबंध किसी भी समाज, जाति, राष्ट्र, विशिष्ट समुदाय में प्रचलित विचारधाराओं, रुचियों, प्रवृत्तियों, रीति- रिवाजों, रहन-सहन आदि से होता है। इसलिए संस्कृति के दायरे में सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक एवं कलात्मक मान्यताओं के तत्व इसमें समाहित रहते हैं और पीढ़ी- दर - पीढ़ी उत्तराधिकार के रूप में प्रसारित होते रहते हैं। संस्कृति को लोग केवल नाच - गाने तक ही सीमित करते हैं। यह सही नहीं है। संस्कृति के आयामों का विस्तार तो व्यापक है। सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, दार्शनिक एवं सृजन के उपादानों तक विस्तृत रूप में फैला हुआ है जिसमें परिवेश से जुड़ा समाज, भौगोलिक वनस्पतियां, धर्म, दर्शन, पौराणिक मान्यताएं, अंधविश्वास, टोना- टोटका, परंपरा, रीति- रिवाज, विवाह - संस्कार, खानपान, रहन-सहन, पहनावा - ओढ़ावा आदि इनसे संबंधित हैं।समाज ही संस्कृति का वह आधार है जहां मनुष्य व्यवहार करना सीखता है तथा वहीं उसका सामाजीकरण होता है। संस्कृति को एक सामाजिक परिघटना कहा जा सकता है क्योंकि इसका विकास मानव की आंतरिक क्रियाओं के माध्यम से होता है संस्कृति को सामाजिक परिघटना इसलिए कहा जाता है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा नहीं निर्मित होती बल्कि पूरा समाज इसका निर्माण करता है। इसलिए इसमें लोक व्यवहार, धर्म , दर्शन, प्रथाएं, परंपराएं, लोकविश्वास, लोकगीत, लोक कथाएं, साहित्य, भाषा आदि सबका समावेश होता है। 7

लोकनाट्य परंपरा :

किसी भी देश और समाज को अच्छी तरह जानने व समझने के लिए वहां की लोक संस्कृति, वहां के लोकगीतों, रीति - रिवाजों, परंपराओं, लोक- गाथाओं और संस्कारों को जानना आवश्यक होता है। इसलिए कहा जाता है कि लोक साहित्य सांस्कृतिक वैभव का खजाना होता है जिसमें रीति- रिवाज, परंपराओं, सामाजिक एवं धार्मिक विश्वासों के चित्रण के लिए महत्वपूर्ण स्थान रहता है। लोक साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से माना

© Shiksha Samvad| Received: 03 September 2025 | Accepted: 06 September 2025 | Published: 11 September 2025

जाता है जिसकी रचना लोक करता है। लोकजीवन की सरलतम भाव - अभिव्यंजना एवं नैसर्गिक अनुभूतियों का चित्रण लोकगीतों, लोक- कथाओं में मिलता है। लोकसाहित्य में जनमानस का हृदय बोलता है। इसलिए जनसाधारण से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहना चाहिए।8

भारत में लोकनाट्य की परंपरा बहुत पुरानी है। वैसे तो लोकनाटक का उद्भव लोक के मनोरंजन के लिए हुआ परंतु धीरे-धीरे इसका स्वरूप बदला और लोकनाटकों के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक विभिन्न रीति रिवाज, परंपराओं व ज्ञान का भी हस्तांतरण होता रहा है। नाटक की उत्पत्ति के बारे में एक कथा अत्यधिक प्रचलित है। एक बार इंद्र और दूसरे देवताओं ने लोगों के मनोरंजन के लिए ब्रह्मा से कोई मनोविनोद का साधन पैदा करने की प्रार्थना की। देवगण लोकरंजन के लिए ऐसा साधन चाहते थे जिसे सुना व आंखों से देखा जा सके। उसमें सभी लोग समान रूप से भाग ले सकें। उस समय वेदों के पठन-पाठन का अधिकार शूद्रों के लिए निषिद्ध था। ब्रह्मा ने इसकी आवश्यकता को महसूस किया और उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पांचवें वेद नाटक की रचना की। इसी कारण नाटक को पंचम वेद कहा गया है। भरतमुनि ने इस तथ्य का उल्लेख अपने नाट्यशास्त्र में किया है :

जग्राह पाठ्यमऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयानरसानाथर्वणादपि।।

वेदोपवेदै: संबद्धो नाट्यवेदो महात्मना।

एवं भगवता सृष्ट्रो ब्रह्मणा सर्ववेदिना ।। 9

अर्थात् ब्रह्मा ने पढ़ने की सामग्री को ऋग्वेद से, गीत को सामवेद से, अभिनय को यजुर्वेद से एवं रसों को अथर्ववेद से लिया। इस प्रकार सब वेदों के ज्ञाता महात्मा ब्रह्मा के द्वारा वेदों और उपवेदों से संबंध रखनेवाला नाट्यवेद रचा गया।

दूसरी कथा इस तरह बताई गई है कि एक बार देवताओं ने पृथ्वी की रंगशाला में असुर पराजय या सुर - असुर नामक नाटक का सफलतापूर्वक मंचन किया था जिससे असुर समाज कुपित हो गया और उसने देवताओं से झगड़ा किया। कहीं-कहीं यह कथा भी प्रचलित है कि ब्रह्मा के आदेश पर भरतमुनि ने अपने सौ पुत्रों के साथ नाटक तैयार किया और इंद्रध्वज महोत्सव पर अपनी प्रस्तुति 'देवासुर संग्राम' नाटक के रूप में दी। इस नाटक में निश्चय ही देवताओं की जीत और असुरों की पराजय दिखाई गई। इससे असुर नाराज हो गए और उन्होंने देवों के कार्यों में विघ्न डालना आरंभ कर दिया। तब ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से नाट्यगृह का निर्माण करवाया और रंगमंच की रक्षा हेतु देवताओं को नियुक्त किया। इन कथाओं से इतना तो संकेत मिलता है कि प्राचीन युग में भी नाटकों का प्रदर्शन सुर और असुर दोनों समाजों में किया जाता था। यही परंपरा आगे चलकर संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि से होती हुई हिंदी साहित्य में प्रवाहित हुई और सामान्यजन तक विभिन्न रूपों में पहुंची है।

भारत एक सांस्कृतिक रूपों वाला देश है और लोकनाटक लोक की कलात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। उत्सव, त्यौहार, गीत, नृत्य कथा- प्रसंग अथवा अन्य कोई भी जनजीवन की घटनाएं हों , सभी में लोकनाटक की प्रतिध्वनि दिखाई देती है। जायसी, सूर, तुलसी या अन्य मध्यकालीन कवियों के काव्यपाठों में नाटकीय अभिनय के तत्व विद्यमान रहते थे। यद्यपि उनकी रचना इस उद्देश्य से नहीं हुई कि उन्हें रंगमंच पर अभिनीत किया जाए। 'पद्मावत' की बात करें तो जायसी ने अपने इस ग्रंथ में पद्मावत की कथा- वर्णन, नृत्य, जादू के खेल, कठपुतली के नृत्य, स्वर संगीत, नाटक तमाशा , नटों के तमाशे - खेल आदि के द्वारा जनसाधारण के नाट्यात्मक मनोविनोद का वर्णन किया है।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस पर आधारित रामलीला उत्तर भारत का एक लोकप्रिय और पारंपरिक लोकनाट्य है जिसमें लोकभाषा, लोक संगीत, गीत, नृत्य और संवाद के माध्यम से राम के आदर्श चरित्र का प्रदर्शन किया जाता है। खासतौर पर दशहरा उत्सव के दौरान मंचित होने वाला यह लोकनाटक बुराई पर अच्छाई, असत्य पर सत्य की जीत के केंद्रीय विषय के साथ सामाजिक और धार्मिक शिक्षा देता है।

भारतेंदु का 'अंधेर नगरी' अपने युग का ही नहीं प्रत्युत आज भी एक प्रासंगिक लोकनाटक के रूप में जाना जाता है। भारतेंदु ने एक लोक प्रचलित कहावत अंधेर नगरी चौपट राजा को आधार बनाकर अपने समय की उन कुव्यवस्थाओं को नाट्य पर्दे पर उतारा जो आज भी भारतीय समाज में जड़ जमाए हुए हैं। यह लोक - प्रसिद्ध नाटक सन् 1881 में काशी में नेशनल थियेटर की स्थापना पर एक ही दिन में लिखा गया। नेशनल थियेटर ने ही इसका पहला मंचन भी किया। इसके बाद अंधेर नगरी का स्टेज, नुक्कड़ नाटकों के रूप में अनेक बार मंचन हो चुका है।

लोकनाट्य में रंजकता की प्रधानता रहती है और यह अपनी संस्कृति से जुड़ा रहता है। इसी कारण विभिन्न समुदायों के दर्शक एक साथ बहुत बड़ी संख्या में लोकनाट्य देखते हैं। भारतीय लोकनाट्य भारत की विविध और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये लोकनाट्य क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों, रीति-रिवाजों, परंपराओं और लोकोक्तियों और कथाओं पर आधारित हैं। इनसे जनसामान्य का मनोरंजन तो होता ही है, समाज की संस्कृति और परंपराओं का भी ये दर्शन कराते हैं। उत्तर भारत का नौटंकी, महाराष्ट्र का तमाशा, कर्नाटक का यक्षगान केरल का कथकली, गुजरात का भवाई , पश्चिम बंगाल का जात्रा या यात्रा आदि प्रमुख भारतीय लोकनाट्य शैलियां हैं।

प्रमुख लोकनाट्य :

नौटंकी :

नौटंकी विशेषत: उत्तर प्रदेश राज्य का प्रमुख लोकनाट्य है। नौटंकी शब्द की उत्पत्ति के विषय में कई मत प्रचलित हैं। पहले मत के अनुसार नाटक शब्द का अपभ्रंश ही नौटंकी है। एक मत के अनुसार इसका संबंध मुल्तान की राजकुमारी नौटंकी से है। पंजाब में नौटंकी का प्रचार अधिक होने से इसका संबंध पंजाब की किसी नौटंकी नाम की बनी - ठनी रहने वाली वैश्या से जोड़ा जाता है। हमारे विचार से नौटंकी नाटक का ही बिगड़ा रूप है। यदि यह भी मान लिया जाए कि सन् 1920 के दशक में राजकुमारी नौटंकी की कहानी की लोकप्रियता के कारण इस नाट्यशैली को अपना नाम मिलने से पहले इसे स्वांग या प्रहसन कहा जाता था तो भी हमारे मत को ही समर्थन मिलता है क्योंकि स्वांग एक प्रकार से नाटक का ही पर्याय माना जा सकता है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हाथरस और कानपुर नौटंकी के दो प्रमुख केंद्र रहे। आरंभ में केवल पुरुषों को ही नौटंकी मंडलियों में शामिल होने की अनुमति थी। बाद में महिलाओं ने भी मंच पर प्रवेश करना शुरू कर दिया। प्रसिद्ध नौटंकी कलाकार गुलाबबाई ने ग्रेट गुलाब थिएटर कंपनी की स्थापना की। इसी तरह कृष्णाबाई ने कृष्णा नौटंकी कंपनी की स्थापना की।

तमाशा :

तमाशा मुख्यतः महाराष्ट्र की लोक - कला है जिसका उद्भव सोलहवीं सदी माना जाता है। तमाशा का अर्थ मनोरंजन से है और इसकी उत्पत्ति संस्कृत के नाट्य रूपों प्रहसन और भाण से मानी जा सकती है। तमाशा के माध्यम से पौराणिक कथाओं की प्रस्तुति दी जाती है। चूंकि तमाशा शब्द अरबी भाषा का है; इसलिए कुछ विद्वान इसे मुसलमानों के प्रभाव में उपजी लोककला मानते हैं किंतु ऐसा अनुमान लगाना सही नहीं है क्योंकि तमाशा का प्रवर्तक राम जोशी को माना जाता है। तमाशा करने वाली मंडली 'फड़' कहलाती है।

यक्षगान :

यह कर्नाटक का पारंपरिक लोक नृत्य - नाटक है। इसकी उत्पत्ति 15वीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन के दौरान हुई। यह आंदोलन कर्नाटक संगीत के जनक पुरंदरदास द्वारा प्रणीत भक्तिगीतों से प्रभावित था। यक्षगान का शाब्दिक अर्थ है -- दिव्य संगीत। मुख्य रूप से कविताओं पर केंद्रित एक शैली के रूप में पहचानी जाने वाली यह कला रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों की पौराणिक कथाओं को कहने के लिए कहानी, संगीत और नृत्य का संयोजन करती है।

जात्रा या यात्रा :

© Shiksha Samvad| Received: 03 September 2025 | Accepted: 06 September 2025 | Published: 11 September 2025

जात्रा या यात्रा पश्चिम बंगाल का प्रसिद्ध लोकनाटक है। इसका विस्तार बिहार, असम, उड़ीसा और त्रिपुरा सहित भारत के अधिकांश बंगाली भाषी राज्यों तक है। यह मुख्य रूप से विभिन्न देवी - देवताओं के सम्मान में निकाले गए जुलूसों का विकसित रूप है। बंगाल पुनर्जागरण के दौरान इसे शहरी प्रोसेनियम थिएटरों में प्रवेश मिला।

जात्रा की उत्पत्ति 16वीं शताब्दी में बंगाल में हुई। तब यह गायन का एक प्रसिद्ध रूप था जिसे चर्या कहा गया। चैतन्य और उनके अनुयायियों ने सांस्कृतिक स्तर पर भारत के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय एकीकरण लाने में योगदान दिया। चैतन्य ने स्वयं एक नाटक में रुक्मिणी की भूमिका निभाई थी। मुकुंददास की मंडली ने जात्रा के माध्यम से औपनिवेशिक शोषण, देशभक्ति और उपनिवेश विरोधी संघर्ष, सामंती व जाति व्यवस्था के उत्पीड़न आदि का प्रतिनिधित्व किया। सन् 1940 के दौरान इस लोकनाटक में महिलाएं भाग लेने लगीं किंतु भारत - विभाजन के बाद भारतीय वातावरण ने इस नाट्य शैली को प्रभावित किया। अब यह कला समाप्त होने की कगार पर है। जात्रा के प्रति लोगों का रुझान कम हो गया है जिससे कई कलाकारों की रोजी-रोटी पर खतरा मंडराने लगा है।

रासलीला :

लोकनाट्यों में रास का विशेष स्थान है। आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में उपरूपकों के अंतर्गत रास के रासक और नाट्य रासक दो रूपों का उल्लेख किया है। नृत्य, गायन और नाटक के सभी तत्व रास में विद्यमान हैं। रासलीला परंपरा के जनक कृष्ण माने जाते हैं और रास की नाट्य परंपरा की जनक ब्रजगोपी थीं। ऐसा माना जाता है कि जब कृष्ण शरद - निशा में महारास करते-करते अंतर्धान हो गए तब विरह - व्यथित गोपियों ने कृष्ण की बृजलीला का यमुना- तट की बालुका में अनुकरण किया। उसी रासलीला की अनुकरण - परंपरा पर वर्तमान में रासलीला के मंचन होते हैं। इस तरह रासलीला कृष्ण की कथा को समर्पित एक लोकनाट्य है। इसका विकास कृष्ण के जीवन से जुड़े गांवों में और शहरों में हुआ। दिल्ली के दक्षिणी भागों, विशेष रूप से वृंदावन में विभिन्न धार्मिक आयोजनों के दौरान रासलीला का मंचन होता है।रासलीला में इसका आरंभ रास (नृत्य) से होता है और बाद में लीला (नाट्य) का प्रदर्शन किया जाता है।

रामलीला :

यह उत्तर भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण लोकनाट्य है जो मुख्य रूप से दशहरा पर्व के अवसर पर खेला जाता है। रामलीला तुलसीकृत रामचरितमानस पर आधारित लोकनाट्य है। क्षेत्रीय विविधता के कारण यह भारत के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग ढंग से मंचित होता है। वर्ष 2008 में यूनेस्को ने इसे "मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत" में शामिल किया है।

दशावतार :

यह महाराष्ट्र के दक्षिण कोंकण क्षेत्र और गोवा राज्य में सर्वाधिक लोकप्रिय है। आरंभ में यह सिंधु दुर्ग जिले में कावठे क्षेत्र के गोरे नाम के एक ब्राह्मण के द्वारा कोंकण क्षेत्र में लोकप्रिय हुआ था। इसे विष्णु के दस अवतारों-- मत्स्य, कुर्म, वाराह, नृसिंह , वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि-- के सम्मान में मंचित किया जाता है।

करियाला :

करियाला हिमाचल प्रदेश का लोकप्रिय पारंपरिक लोक नाटक है जो मुख्य रूप से शिमला, सोलन और सिरमौर जिलों में प्रचलित है। इस लोकनाट्य में छोटे-छोटे स्वांगों का प्रदर्शन किया जाता है। करियाला लोगों को मनोरंजन प्रदान करने के साथ-साथ समाज - सुधार का भी एक सशक्त माध्यम है। इसका मंचन सर्दियों में विशेष तौर पर दीपावली के आसपास किया जाता है।

ख्याल :

यह राजस्थान की प्रमुख नाट्यशैली है। कुचामनी ख्याल, शेखावटी ख्याल, चिड़ावा ख्याल, जयपुरी ख्याल, हेला ख्याल, कन्हैया ख्याल, तुर्रा कलंगी ख्याल, अली बख्शी ख्याल आदि ख्याल की प्रमुख शैलियां हैं जो राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में लोकप्रिय हैं। अलग-अलग ख्याल - शैलियों के जनक भी अलग-अलग हैं; जैसे तुर्रा ख्याल का जनक तुनकगीर और चिड़ावा ख्याल का जनक दुलिया राणा। ख्याल में सूत्रधार को हलकारा कहा जाता है।

स्वांग :

स्वांग मुख्य रूप से हरियाणा से जुड़ा लोकनाटक है लेकिन यह पंजाब सहित राजस्थान, उत्तर प्रदेश और गुजरात के क्षेत्र में भी लोकप्रिय है। स्वांग का शाब्दिक अर्थ रूप धरना , नकल करना या अनुकरण करना है। नौटंकी, तमाशा लोकनाट्य शैलियां भी स्वांग से जुड़ी मानी जा सकती है। स्वांग के कलाकार सांगी कहलाते हैं। हरियाणा में स्वांग की परंपरा का इतिहास करीब ढाई सौ साल पुराना है। सन् 1730 से पहले किशनलाल भाट को सांग का पहला प्रणेता माना जाता है। इसके बाद दीपचंद, हरदेवा , लख्मीचंद, मांगेराम आदि प्रमुख सांगी हैं। पंडित लख्मीचंद को 'स्वांग - सम्राट' माना गया है। रोहतक में उनके नाम पर दादा लख्मीचंद राज्य प्रदर्शन एवं दृश्य कला विश्वविद्यालय स्थापित है।

आज लोकसंस्कृति और लोक परंपराएं समाप्ति की ओर हैं। लोकनाट्य के प्रसिद्ध और समृद्ध कलाकार आर्थिक दृष्टि से विपन्न हैं। इसका प्रमुख कारण राजकीय रंगमंच संस्थाओं का लोकनाट्य के प्रति अरुचि है।

लोक - नाटकों के प्रदर्शन के लिए रंगमंचीय संस्थाओं की विशेष भूमिका होती है किंतु नियमित रूप से मंचन करने वाली संस्थाओं की आज बहुत बड़ी कमी है। नियमित मंचन करने वाली दो प्रकार की संस्थाएं हैं -- राज्यों के द्वारा संचालित रंगमंडल और व्यक्तिगत स्तर पर व्यावसायिक संस्थाएं। सरकारी संस्थानों में नई दिल्ली का राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (एनएसडी), संगीत नाटक अकादमी, इंडियन पीपल्स थियेटर एसोसिएशन , आदिवासी लोककला परिषद मध्य प्रदेश, भारतेंदु नाटक अकादमी लखनऊ, कालिदास अकादमी उज्जैन, पृथ्वी थियेटर मुंबई, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी जोधपुर प्रमुख हैं। व्यावसायिक संस्थाओं में मुंबई की रंग मंडली 'अंक' , कोलकाता की अनामिका संस्था, बनारस की अनुपमा मंडली, पटना की बिहार आर्ट थिएटर, गाजीपुर की प्रेक्षा आदि प्रमुख हैं।

सन्दर्भ :

1) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, दृष्टव्य जनपद त्रैमासिक पत्रिका, पृष्ठ 85, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, अक्टूबर 1952, प्रथम अंक।

2) सिद्धांत कौमुदी, वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई।

3) वासुदेव शरण अग्रवाल, लोक का प्रत्यक्ष दर्शन, सम्मेलन मैगज़ीन, लोक संस्कृति अंक, प्रयाग, पृष्ठ 67 4) डॉ० सुरेश चंद्र निर्मल, रंगमंच और लोकनाट्य भाग, पृष्ठ 36

5) डॉ० कुलदीप कौर, लोक - संस्कृति से अभिप्राय ,स्वरूप, विशेषताएं तथा विभिन्न पक्ष, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ इनफॉरमेशन मूवमेंट, अगस्त 2016, पृष्ठ 11

6) वही, पृष्ठ 11

7) रामसिंह यादव, लोक संस्कृति के स्वरूप में संजीव के उपन्यास, पृष्ठ 7

8) वही, पृष्ठ 7

9) भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 1/ 17, 18

Cite this Article:

अलक्षेन्द्र प्रभाकर, "लोक संस्कृति और लोकनाट्य परंपरा" *Shiksha Samvad International Open Access Peer-Reviewed & Refereed Journal of Multidisciplinary Research, ISSN: 2584-0983 (Online), Volume 03, Issue 01, pp.92-98, September 2025. Journal URL: https://shikshasamvad.com/*

This is an Open Access Journal / article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License CC BY-NC-ND 3.0) which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited. All rights reserved

CERTIFICATE

of Publication

This Certificate is proudly presented to

अलक्षेन्द्र प्रभाकर

For publication of research paper title

"लोक संस्कृति और लोकनाट्य परंपरा"

Published in 'Shiksha Samvad' Peer-Reviewed and Refereed Research Journal and E-ISSN: 2584-0983(Online), Volume-03, Issue-01, Month September 2025, Impact-Factor, RPRI-3.87.

Dr. Neeraj Yadav
Editor-In-Chief

Dr. Lohans Kumar Kalyani
Executive-chief- Editor

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at: https://shikshasamvad.com/